A. क्योंकि केल्सन ने विधि को धर्म, नीतिशास्त्र,समाजशास्त्र और इतिहास से अप्रभावित रखने पर बल दिया है।

Q. केल्सन का मुख्य विधि सिद्धांत क्या है?

A. विधि सिद्धांत के अंतर्गत वास्तविक विधि अर्थात विधि जैसी कि ''वह है'' का वर्णन होना चाहिए न कि आदर्शात्मक विधि (जैसी होनी चाहिए) का।

Q. ''विधि मनोवैज्ञानिक तत्व से हीन समादेश है।'' यह कथन किसका है?

A. **केल्सन** का (एक ऐसा समादेश जो नीतिशास्त्र, राजनीति-शास्त्र, दर्शन एवं मनोविज्ञान आदि से रहित हो)।

Q. केल्सन की राय में समादेश का क्या तात्पर्य है?

A. **कर्तव्य आरोपित करना**।

Q. ''विधि सिद्धांत को नीतिशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, इतिहास इत्यादि से अप्रभावित होना चाहिए।'' यह कथन किस विधिशास्त्री का है?

A. **केल्सन** का।

Q. ''राज्य तथा विधि दोनों समरूप हैं। राज्य मानव व्यवहार की एक प्रणाली, सामाजिक दबाव की एक व्यवस्था के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यह दबाव की व्यवस्था विधिक व्यवस्था से भिन्न इसलिए नहीं है, क्योंकि एक समाज के भीतर दो नहीं वरन मात्र एक ही दबाव की व्यवस्था एक समय पर वैध हो सकती है।'' इस सिद्धांत का प्रतिपादक कौन है?

A. **केल्सन**।

प्राकृतिक विधि (Natural Law)

'प्राकृतिक विधि' के सिद्धांतों ने विधिशास्त्र की अवधारणा को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। सामान्यत: प्राकृतिक विधि का तात्पर्य प्रकृति प्रदत्त विधि से माना जाता है। प्रकृति अर्थात वह सर्वोच्च शक्ति अथवा सत्ता जिसने प्रकृति की रचना (सृष्टि) की। नि:संदेह संकेत ईश्वरीय शक्ति अथवा सत्ता की ओर है। अत: परंपरागत रूप में प्राकृतिक विधि का अभिप्राय उन नियमों और सिद्धांतों से है जो किसी सर्वोच्च स्रोत से नि:सृत हैं, किंतु जो कोई राजनीतिक या सांसारिक प्राधिकारी नहीं हैं। अत: विधिशास्त्रियों में इस प्रकार सृजित विधि को प्रकृति विधि (Law of Nature), दैवीय विधि (Divine Laws), नैतिक विधि (Moral Law), प्राकृतिक विधि (Natural Law), सार्वभौमिक विधि (Universal Law), ईश्वरीय विधि (Law of God)और अलिखित विधि (Unwritten Law) इत्यादि नामों से भी जाना जाता है। प्राकृतिक विधि को **'जस नेचुरले' (Jus naturale)** भी कहा जाता है, जिसने विश्व की प्राचीनतम विधिक प्रणाली से लेकर मध्यकालीन और आधुनिक विधिक प्रणालियों को भी न केवल प्रभावित किया बल्कि निरंतर अध्ययन, प्रभावविष्णुता और इसके आत्मसातीकरण का एक विषय रहा। सारत: प्राकृतिक विधि के सिद्धांतों को निम्नलिखित चार वर्गों में विभाजित करते हुए इसका अध्ययन किया जा सकता है–

(1) प्राचीन सिद्धांत,

(2) मध्यकालीन सिद्धांत,

(3) पुनर्जागरण काल के सिद्धांत, और

(4) आधुनिक सिद्धांत।

1. प्राचीन सिद्धांत

ऐसा माना जाता है कि 'प्राकृतिक विधि' का जन्म 'यूनान' में हुआ। **सुकरात, अरस्तू, स्टोइक** आदि इस काल के **मुख्य विचारक** हैं। भारत की प्राचीन हिंदू विधि प्रणाली और अंधकाल (Dark Ages) की अवधारणा को इसी सिद्धांत से प्रेरित माना जाता है।

सुकरात (470-399 ई. पूर्व) का मानना है कि प्राकृतिक विधि सार्वभौमिक एवं अपरिवर्तनशील होती है। यह बाध्यकारी है। मानव अंतर्दृष्टि विधि का आधार है। भौतिक विधि की भांति एक नैतिक विधि भी है। अंतर्दृष्टि की यह प्रेरणा होती है कि उसका पालन किया जाए। उनके शिष्य प्लेटो ने भी मानव अंतर्दृष्टि की इस अवधारणा का समर्थन किया कि यह व्यक्ति की अच्छाई और बुराई में भेद करती है तथा अच्छाई के अनुपालन के लिए प्रेरित करती है। **रिपब्लिक** इनकी **मुख्य कृति** है, जिसमें इन्होंने आदर्श राज्य की कल्पना की है।

अरस्तू ने भी मानव को ईश्वरीय सृष्टि का अंग मानते हुए उसके सक्रिय युक्ति द्वारा इच्छानुपालन की बात दोहराई। अरस्तू के अनुसार, मनुष्य अपनी युक्ति के द्वारा न्याय के शाश्वत सिद्धांत का पता लगा सकता है और पता लगाई गई विधि ही प्राकृतिक

विधि है। इस पर आधारित अवधारणा को बाद में काण्ट, हीगल, केल्सन और स्टैम्मलर आदि ने भी स्वीकार किया। इतना ही नहीं रोम के स्टोयकों ने भी अरस्तू के सिद्धांत को आधार बनाते हुए उसे एक नीतिशास्त्रीय सिद्धांत के रूप में परिवर्तित किया, जिनका मुख्य आधार वाक्य यह रहा कि ''यह मनुष्य का नैतिक कर्तव्य है कि वह अपने को 'प्रकृति विधि' जो सर्वव्यापी और सभी पर बाध्यकारी होती है, के अधीन रखें''। इसी धारणा पर प्राचीन रोमन विधिशास्त्रियों ने विधि को तीन वर्गों में विभाजित किया–

(i) सिविल लॉ (Jus civile) : रोमन नागरिकों के लिए।

(ii) राष्ट्रों की विधि (Jus jentium) : सिविल और प्राकृतिक विधि का मिश्रण।

(iii) प्राकृतिक विधि (Jus naturale) : रोमन एवं विदेशी नागरिकों के लिए।

इसी क्रम में हिंदू विधि प्रणाली को विश्व की प्राचीनतम विधि प्रणाली होने की संज्ञा दी जाती है, जिसने प्रारंभ से ही एक अति तर्कसंगत और सांगोपांग विधिक अवधारणा का प्रतिपादन किया किंतु देश काल और वातावरण की अस्थिरता ने इसे विकसित और सर्वव्यापी होने का अवसर प्रदान नहीं किया। इस प्रणाली का भी सार यही था कि विधि ईश्वर प्रदत्त है जिसे राजा के माध्यम से प्रवर्तित कराया जाता है। श्रुतियां और स्मृतियां प्राचीनतम विधि ग्रंथ हैं। **मनु** एवं **नारद** इस काल के **प्रमुख विचारक** हैं। अंधकाल में संत ऑगस्टाइन के विचारों ने भी प्राकृतिक विधि को संबल प्रदान किया जिनका मानना था कि विधि का उद्देश्य ईश्वर के साथ संयोग है। यदि मानवीय विधियां ईश्वर के सिद्धांतों के विपरीत हैं, तो उनकी अवहेलना की जानी चाहिए। वस्तुत: यह काल ईसाई पादरियों का था, जिन्होंने धर्म प्रधान विधिक अवधारणा को प्रमुखता प्रदान की।

2. मध्यकालीन सिद्धांत

तत्कालीन कैथोलिक दार्शनिकों और धर्मशास्त्रियों ने भी प्राकृतिक विधि को धार्मिक आधार प्रदान करते हुए तथा पूर्व के सिद्धांतों की कट्टरता को लचीला बनाते हुए नवीन सिद्धांत प्रस्तुत किए। इस काल के प्रमुख विचारक टॉमस एक्विनास हैं, जिन्होंने अरस्तू के विचारों का समर्थन करने के साथ विधि को निम्नरूपेण अभिव्यक्त किया :

''विधि युक्ति-उद्भूत नियम है जो सर्वमान्य के हित के लिए उसके द्वारा बनाया गया है जो समुदाय की संरक्षा करता है और प्रख्यापित किया गया है।''

एक्विनास ने विधि को चार वर्गों में विभाजित किया है–

(i) ईश्वरीय विधि।

(ii) प्राकृतिक विधि - मानव युक्ति से प्रकट एवं दैवीय विधि का भाग।

(iiii) दैवीय विधि - धर्मशास्त्रों की विधि।

(iv) मानव विधियां।

एक्विनास के अनुसार, विध्यात्मक विधि को धर्मग्रंथों की विधि के अनुरूप होना चाहिए और यह केवल उस सीमा तक ही विधिमान्य है जहां तक कि वह प्राकृतिक विधि के मेल में अर्थात् **शाश्वत विधि (Eternal Law)** के अनुरूप है। इस प्रकार एक्विनास ने अरस्तू के राजनीतिक दर्शन को ईसाई धर्म के साथ संयोजित करते हुए प्राकृतिक विधि का एक तर्कसंगत और लचीला सिद्धांत अपनाया। सारत: उसने विधि पर चर्च की सत्ता प्रत्यारोपित करते हुए स्पष्ट किया कि राजा की शक्तियां सीमित होती हैं और उन्हें सदैव ही दैवीय विधि के मार्गदर्शन के अधीन कार्य करना चाहिए। उसने मानव विधि के बारे में यह धारणा बनाई कि अनुचित होने पर भी मानव को इसका पालन करना चाहिए।

3. पुनर्जागरण काल के सिद्धांत

पुनर्जागरण काल एक ऐसा समय था जब समाज के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में जन-जागृति का बोल-बाला था। परिणामत: विधिक क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं रहा। सामाजिक परिवर्तन, वैज्ञानिक प्रगति एवं खोज, जनांदोलन आदि यूरोप की कुछ ऐसी परिस्थितियां थीं, जिनके कारण व्यक्ति की परंपरागत विचारधाराओं में अति उन्नयन हुआ और 'तर्कनावाद' ने इस युग की वाणी बनकर राष्ट्रीयता की भावना को चर्च के प्रभुत्व पर हावी कर दिया, जिसकी परिणति इस रूप में हुई कि समाज का आधार एक सामाजिक संविदा है। इसी क्रम में अपने जीवन और संपत्ति की रक्षा के लिए मानव ने जो करार किया वह **''एका के समझौता'' (Lactum Unions)** के रूप में विख्यात हुआ जिसका प्रतिपादक इटली का **मार्सिलियम** था। **ग्रोसियस, हॉब्स, जॉन लॉक, रूसो** इस काल के **मुख्य विचारक** हैं।

ह्यूगो ग्रोसियस (1583-1645) ने भी माना है कि राजनीतिक समाज का आधार सामाजिक संविदा है और संप्रभु का यह कर्तव्य है कि वह नागरिक की रक्षा करे क्योंकि उसे शक्ति केवल इसी प्रयोजन के लिए दी गई है और वह (संप्रभु) भी प्राकृतिक विधि से आबद्ध है।.....इसी प्रकार प्रजा को भी संप्रभु के आदेश का पालन करना चाहिए भले ही वह कितना भी दुष्ट क्यों न हो। **ग्रोसियस** को **अंतरराष्ट्रीय विधि** का **जन्मदाता** भी माना जाता है। अपने सामाजिक संविदा के सिद्धांत के आधार पर उसने निम्नलिखित सिद्धांत प्रतिपादित किए–

(i) सभी सरकारें बराबर हैं।
(ii) अपने विदेशी संबंधों में सभी सरकारें पूर्णतः स्वतंत्र हैं।
(iii) सरकारों के बीच दिए गए वचन आबद्धकर प्रकृति के होते हैं क्योंकि किसी वचन को पूरा करना प्राकृतिक विधि का एक सिद्धांत है।

इसी प्रकार **हॉब्स** (1588-1679) ने भी **'सामाजिक संविदा'** को आधार बनाते हुए अपनी विधिक अवधारणा को निरंकुश शासनवाद (absolutism) पर केंद्रित किया।

हॉब्स का मानना है कि प्रजा को (चर्च को भी) संप्रभु के विरुद्ध कोई अधिकार नहीं है और किसी भी स्थिति में संप्रभु की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए, किंतु संप्रभु को भी प्राकृतिक विधि का पालन करना चाहिए। इस प्रकार हॉब्स ने व्यक्तिवाद, भौतिकवाद, उपयोगितावाद और निरंकुश शासनवाद इत्यादि पर अपने दृष्टिकोण को केंद्रित किया, जिससे ऑस्टिन सहित अनेक विधिशास्त्री प्रभावित हुए।

परवर्तीकाल में लॉक (1632-1704) ने प्राकृतिक विधि और 'सामाजिक संविदा' का नए ढंग से निर्वचन किया। लॉक के अनुसार प्राकृतिक अवस्था स्वर्णयुग थी, केवल संपत्ति असुरक्षित थी जिसकी संरक्षा के प्रयोजन के लिए ही मनुष्यों ने सामाजिक संविदा की जिसके अधीन उसने अपने सारे अधिकारों को नहीं अपितु उनके केवल एक भाग को ही अभ्यर्पित किया जिसमें व्यवस्था कायम रखने और प्रकृति की विधि को प्रवृत्त करने के लिए अपने प्राकृतिक अधिकार जैसे जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति का अधिकार को अपने पास सुरक्षित रखा।

लॉक ने स्पष्ट किया कि सरकार और विधि का प्रयोजन प्राकृतिक अधिकारों को कायम रखना और उनकी संरक्षा करना है। जब तक सरकार इस प्रयोजन की पूर्ति करती है, विधियां मान्य और आबद्धकर होती हैं, परंतु यदि वह ऐसा नहीं करती है तो उसकी विधियों की कोई मान्यता नहीं होती और उस सरकार को हटाया जा सकता है। इस प्रकार लॉक ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता का पक्ष लिया, जबकि हॉब्स ने सत्ता का समर्थन किया था। वस्तुतः लॉक का यह सिद्धांत ब्रिटेन की गौरवपूर्ण क्रांति (1688) से प्रेरित है जिसने वहां राजतंत्र के विरुद्ध संसदीय प्रजातंत्र को आमंत्रित किया और जो विश्व के लिए एक मार्गदर्शक भी बना।

लॉक के बाद **रूसो** (1721-1778) ने भी **'सामाजिक संविदा'** और 'प्राकृतिक विधि' को मानव की **'सामान्य इच्छा'** के परिप्रेक्ष्य में एक नया निर्वचन प्रस्तुत किया। रूसो के अनुसार 'सामाजिक संविदा' एक ऐतिहासिक तथ्य नहीं अपितु 'युक्ति' का एक काल्पनिक तथ्य है। इस संविदा के पूर्व भी मानव सुखी और स्वतंत्र था तथा उनके बीच में समता थी, जिसके परिरक्षण के लिए ही मानव ने सामाजिक संविदा को अपनाया जिसके लिए उन्होंने अपने अधिकारों (स्वतंत्रता और समता) को किसी एक व्यक्ति अर्थात संप्रभु को नहीं अपितु समुदाय, जो 'सामान्य इच्छा' (general will) का प्रतिनिधित्व करता है, को अभ्यर्पित किया।

रूसो ने स्पष्ट किया कि सामान्य इच्छा का पालन करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है क्योंकि ऐसा करने में वह अप्रत्यक्ष रूप से अपनी स्वयं की इच्छा का ही पालन करता है और राज्य का अस्तित्व स्वतंत्रता और समता की संरक्षा करने के लिए है। रूसो के अनुसार, राज्य और उसके द्वारा निर्मित विधियां दोनों ही सामान्य इच्छा के अधीन हैं, जिससे राज्य का सृजन होता है और यदि सरकार और विधियां सामान्य इच्छा के अनुरूप नहीं हैं तब उन्हें समाप्त कर दिया जाना चाहिए। इस प्रकार लॉक जहां 'व्यक्ति' पर जोर देते हैं वहीं रूसो ने समुदाय की सामान्य इच्छा और मानव की स्वतंत्रता और समता पर बल दिया और इसे ही उन्होंने प्राकृतिक विधि का आधार माना, जिसने तत्कालीन देश- काल में फ्रांसीसी और अमेरिकी क्रांति को प्रेरणा प्रदान करते हुए राष्ट्रवाद को अग्रसर किया। उसके सामान्य इच्छा के सिद्धांत को तो परवर्ती विधिशास्त्री **फिटशे** और **हीगल** ने **'देवरूप'** की संज्ञा दी।

4. आधुनिक सिद्धांत

उन्नीसवीं शताब्दी में प्राकृतिक विधि के 'युक्ति' और 'तर्कनावाद' के विरुद्ध एक अतिप्रतिक्रिया प्रस्फुटित हो चुकी थी जिसका प्रभाव विधिक संकल्पना पर भी पड़ा जिसने अंततः एक समष्टिवादी दृष्टिकोण को जन्म दिया, किंतु बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ होते-होते प्राकृतिक विधि का सिद्धांत पुनर्जीवित हुआ। प्राकृतिक विधि के प्राचीन एवं आधुनिक चिंतन के बीच समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए इसकी प्रकृति एवं विस्तार की व्याख्या की गई। **स्टैम्मलर, जे. कोहलर** इत्यादि विधिशास्त्रियों की अवधारणा को इसी श्रेणी में रखा जा सकता है। 'न्याय के सिद्धांत' इनकी मुख्य कृति है।

आर. **स्टैम्मलर** ने **'परिवर्तनीय तत्वयुक्त प्राकृतिक विधि'** अवधारणा परिकल्पित करते हुए कहा है कि संपूर्ण विध्यात्मक विधि न्यायपूर्ण विधि के लिए एक प्रयास है। न्यायपूर्ण विधि वह है, जो सामाजिक जीवन के ढांचे में इच्छाओं या प्रयोजनों का एक सामंजस्य है, जो देश-काल के साथ परिवर्तित होता रहता है।

स्टैम्मलर का मानना है कि इच्छाओं और प्रयोजनों के ज्ञान के लिए जीवंत सामाजिक संसार के वास्तविक संपर्क में आना होगा, जो यह निर्णय करने में समर्थ बनाएगा कि कौन-सा प्रयोजन विधिक मान्यता प्राप्त करने के लिए योग्य है। इस प्रकार यह पता लगाया जा सकता है कि क्या न्यायपूर्ण है। स्टैम्मलर के अनुसार जो न्यायपूर्ण है, उसी को प्राप्त करना विधि का लक्ष्य होना चाहिए और इसके लिए प्रयास किया जाना चाहिए। हालांकि विधि न्यायपूर्णता के अनुरूप न होने पर भी मान्य होती है। इस प्रकार स्टैम्मलर ने प्राकृतिक विधि की परिवर्तनशील अवधारणा को विकसित किया।

कोहलर ने इस धारणा को और आगे बढ़ाते हुए मंतव्य व्यक्त किया कि विकास क्रम में समाज नैतिक रूप से और सांस्कृतिक रूप से भी उन्नति करता है। अतः संस्कृति की, न कि भौतिकवाद की, अपेक्षाओं को विचार में लेते हुए विधि अपने प्रयोजनों की अच्छे ढंग से पूर्ति कर सकती है। कोहलर का मानना है कि कोई शाश्वत विधि नहीं है। **गेनी, लीफर, फुलर, डेलवेकिहो** आदि इस सिद्धांत के अन्य **समर्थक विधिशास्त्री** हैं।

सारतः प्राकृतिक विधि की अवधारणा ने विभिन्न देश-काल में भिन्न-भिन्न होते हुए भी अपनी छाप विधि एवं विधिशास्त्र की लगभग प्रत्येक विचारधारा पर छोड़ी, जिन्होंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इसकी अवधारणा को अपनी विचारधारा में सम्मिलित किया। इंग्लैंड व अमेरिका की भांति भारत में भी **'प्राकृतिक विधि'** के अनेक मूल तत्व विभिन्न विधियों में समाहित हैं। स्वयं प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत, संविदा कल्प, अपकृत्य में युक्तियुक्तता, न्याय, साम्य और शुद्ध अंतःकरण की अवधारणा प्राकृतिक विधि की ही देन है, जिसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 में भी अवलोकित किया जा सकता है और जिसका उल्लेख उच्चतम न्यायालय ने **ए.के. क्रैपक बनाम भारत संघ, AIR 1970 SC 150** के वाद में भी किया है, जिसे बाद में **मेनका गांधी बनाम भारत संघ, AIR 1978 SC 597** के मामले में व्यापकता प्रदान की गई।

प्रश्नकोश

Q. प्राकृतिक (नैसर्गिक) विधि का जन्म किस देश में हुआ माना जा सकता है?

A. **यूनान**।

Q. नैसर्गिक विधि की आधारशिला किस यूनानी दार्शनिक के द्वारा रखी गई?

A. **हेराक्लिटस के द्वारा** (प्रकृति के तीन लक्षण-अंतिम लक्ष्य, अवस्था और तर्क या युक्ति)।

Q. प्राकृतिक विधि के संबंध में यूनानी दर्शन का जन्मदाता कौन है?

A. **स्टोइक्स**, सुकरात स्टोइक्स विचारधारा (Stoic School) के प्रमुख अनुगामी थे।

Q. विधिशास्त्र की शाखाओं में से किसमें स्टोइक दर्शन ने अपनी अभिव्यक्ति पाई है?

A. **नैसर्गिक विधि शाखा**।

Q. कौन विधिशास्त्री प्राकृतिक विधि विचारधारा के प्राचीन सिद्धांत से संबंधित है?

A. **सुकरात**। प्राकृतिक विधि एक वास्तविक विधि है जो कि सार्वभौमिक एवं अपरिवर्तनशील है तथा यह सभी मनुष्यों पर, सभी स्थानों तथा सभी कालों में समान रूप से लागू होती है।

Q. ''व्यक्ति को राज्य की विधि माननी चाहिए। यदि उसे किसी राज्य की विधि अच्छी नहीं लगती तो उसे अन्य राज्य में चला जाना चाहिए।'' यह कथन किसका है?

A. **सुकरात** का।

Q. नैसर्गिक विधि का धार्मिक चरित्र किसके द्वारा प्रस्तुत किया गया था?

A. **संत ऑगस्टाइन** के द्वारा (प्राकृतिक विधि का मूल स्रोत प्रकृति एवं स्वयं ईश्वर है)।

Q. अंधकार युग में नैसर्गिक विधि को एक नया विवेचन किसने दिया?

A. **संत ऑगस्टाइन** ने।

Q. विधिशास्त्र की किस शाखा ने ''मानवाधिकारों'' की संकल्पना को जन्म दिया?

A. **नैसर्गिक विधि शाखा**।

Q. ''प्राकृतिक विधि मनुष्य की प्रकृति तथा समाज में रहने की उसकी आंतरिक आवश्यकता पर आधारित है।'' यह किस विधिशास्त्री का कथन है?

A. **ह्यूगो ग्रोसियस** का।

Q. उन्नीसवीं शताब्दी में प्राकृतिक विधि के उद्धार के लिए प्रयास करने का श्रेय किसे दिया जाता है?

A. **स्टैम्मलर** को।

Q. किस विधिशास्त्री को 'परवर्ती अंतर्वस्तु की नैसर्गिक विधि' (Natural Law with Variable Content) का प्रवर्तक माना जाता है?

A. **स्टैम्मलर** को (कोई भी आदर्श नहीं होता, वह समय तथा स्थानानुसार परिवर्तनशील है)।

Q. स्टैम्मलर ने विधि को कितने वर्गों में विभाजित किया है?

A. दो वर्ग– **(i) विधि के विचार**; (ii) **विधि की संकल्पना** (विधि अपवाद रहित सार्वभौमिक बंधनकारी इच्छा है)।

Q. यह बात कि प्रकृति के साथ सहमत सही कारण ही वास्तविक विधि है। किस विधिशास्त्री के द्वारा प्रचारित किया गया?

A. **सिसरो** के द्वारा।

Q. प्राकृतिक (नैसर्गिक) विधि के अंतर्गत किन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया?

A. तीन सिद्धांत–

(i) सम्यक् प्रक्रिया का सिद्धांत।

(ii) पक्षपात का सिद्धांत।

(iii) युक्तियुक्तता का सिद्धांत।

Q. नैसर्गिक विधि के मुख्य समर्थक कौन हैं?

A. **स्टोइक्स**, **एक्विनास**, **रूसो**, **स्टैम्मलर**।

Q. ''सभी प्रमाणवादी विधियां एक न्यायोचित विधि को प्राप्त करने का प्रयास हैं और न्याय सामाजिक जीवन ढांचे के भीतर इच्छाओं और प्रयोजनों का समन्वय है। इच्छाओं तथा प्रयोजनों का समन्वय काल और स्थान के साथ परिवर्तनशील है।'' यह कथन किस विधिशास्त्री का है?

A. **रूसो** का।

Q. प्राकृतिक विधि के अन्य उपनाम क्या हैं?

A. (i) **दैवीय विधि**–ईश्वर प्रदत्त होने के कारण।

(ii) **सार्वलौकिक विधि**–सार्वभौमिकता की प्रकृति के कारण।

(iii) **नैतिक विधि**–नैतिकता के समावेश के कारण।

Q. नैसर्गिक विधि का मुख्य आलोचक कौन है?

A. **जर्मी बेंथम** (उपयोगितावाद के सिद्धांत के प्रतिपादक)।

Q. ''नैसर्गिक न्याय के नियमों का उद्देश्य न्याय को सुनिश्चित करना या उसे नकारात्मक रूप से प्रस्तुत करते हुए न्याय की हत्या को रोकना है।'' यह मत किस वाद में अभिव्यक्त किया गया है?

A. **ए.के. क्रैपक बनाम भारत संघ**।

Q. ''भारत के संविधान के **अनुच्छेद 21** में विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया अभिव्यक्ति से अभिप्रेत है ऐसी प्रक्रिया जो विधि के द्वारा विहित है चाहे वह युक्तियुक्त हो अथवा न हो।'' यह निर्णय विधि की किस शाखा का प्रतिनिधित्व करता है?

A. **अधिरचनावादी दृष्टिकोण** (निर्णीत–**ए.के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य**)।

Q. ''राजनीतिक समाज का आधार सामाजिक संविदा है।'' किसने कहा है?

A. **हॉब्स** ने।

Q. कृति 'रिपब्लिक' के लेखक कौन हैं?

A. **प्लूटो**।

Q. अरस्तू के अनुसार, जब समता भंग की गई हो तब उसका पुनः स्थापन करने में किस न्याय का सहारा लिया जाना चाहिए?

A. **सुधारक न्याय**।

Q. अरस्तू ने न्याय के कितने भेद बताए हैं?

A. दो भेद–(i) सामान्य न्याय; तथा
(ii) विशेष न्याय।

Q. अरस्तू का सुधारात्मक न्याय किस न्याय की शाखा माना जाता है?

A. **विशेष न्याय** की (एक अन्य वितरणात्मक न्याय)।

Q. अरस्तू के विचार में संशोधनात्मक (सुधारक) न्याय क्या है?

A. राज्य के अंतर्गत रहने वाले विभिन्न व्यक्तियों के पारस्परिक व्यवहार से उत्पन्न होने वाली असमानता अथवा समानता भंग के दोष को ठीक करके समानता को पुनः स्थापित करने की प्रक्रिया ही सुधारात्मक न्याय या संशोधनात्मक न्याय है।

Q. ''विधि मानव आचरण को नियमों के शासन के अधीन बनाने का उपक्रम है।'' यह कथन किसका है?

A. **फुलर** का।

Q. 'ए थ्योरी ऑफ जस्टिस' किस विधिशास्त्री की कृति है?

A. **रॉल्स** की (पुस्तक के माध्यम से सामाजिक संविदा और काण्ट के विधि दर्शन को पुनर्जीवित करने का प्रयास है)।

Q. ''न्याय कभी दिया नहीं जाता है, यह कठिन कार्य होता है, जिसे प्राप्त करना होता है।'' यह कथन किसका है?

A. **फ्रेडरिक** का।

अध्याय 3 : विधि के स्त्रोत (Source of Law)

विधि के स्त्रोत का तात्पर्य विधि की उत्पत्ति से है। विधिशास्त्र की विभिन्न विचारधाराओं के विचारकों ने विधि की उत्पत्ति को अपने विधिक सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में माना है। उदाहरणस्वरूप प्राकृतिक विधि के विचारकों ने विधि को ईश्वरीय एवं मानवीय दोनों माना है, तो ऑस्टिन ने इसे संप्रभु के आदेश के रूप में संप्रभु से उत्पन्न माना है। समाजशास्त्रीय विचारक सैविनी ने विधि का स्त्रोत लोक चेतना को माना है, तो धर्मशास्त्रीय रूप में वेद, कुरान और बाइबिल को विधि का स्त्रोत माना गया है। इन सर्वमान्यता एवं विभिन्नता के बीच विधिक परिप्रेक्ष्य में कुछ स्त्रोतों को विहित किया गया है, जिन्हें बिना किसी मतभेद के सर्वव्यापी रूप में स्वीकार किया जाता है। इनमें प्रमुख स्त्रोत निम्नलिखित हैं–

(1) रूढ़ि,
(2) पूर्व निर्णय, और
(3) विधायन।

विधि के गौण स्त्रोतों के अंतर्गत नैतिक आचार और साम्या तथा विशेषज्ञों की रायों को माना जाता है।

उपर्युक्त सर्वमान्य स्त्रोतों को निष्कर्षित करने के लिए विभिन्न विधिशास्त्रियों ने विधिक स्त्रोतों का वर्गीकरण भी किया है। सामंड ने विधि के स्त्रोत को दो वर्गों में विभाजित किया है–

(1) औपचारिक स्त्रोत (Formal Sources)
(2) तात्विक स्त्रोत (Material Sources)

सामंड के अनुसार, औपचारिक स्त्रोत वे हैं जिनसे विधि अपनी शक्ति और विधि मान्यता दोनों प्राप्त करती है और तात्विक स्त्रोत वे हैं जिनसे विधि अपने तत्व, जिससे वह निर्मित हुई है, को प्राप्त करती है। जैसे- रूढ़ि। पुनः सामंड ने तात्विक स्त्रोत को दो भागों में बांटा है–

(i) विधिक (Legal)–विधि के आधिकारिक (अव्यवहित) स्त्रोत इस श्रेणी में आते हैं। जैसे- अधिनियमित विधि (विधान), निर्णयज विधि (पूर्वनिर्णय), रूढ़िगत विधि और कन्वेंशन।

(ii) ऐतिहासिक स्त्रोत (Historical Source)- विधिक स्त्रोत से भिन्न स्त्रोत इस श्रेणी में आते हैं। जैसे-विधि लेखन, विदेशी निर्णय, निर्णय के प्रेरक तत्व इत्यादि। सामंड के अनुसार, ये स्त्रोत विधिक इतिहास से संबंधित होते हैं, न कि विधिक सिद्धांत से।

इसी प्रकार **ऑस्टिन** ने विधिक स्त्रोतों को तीन वर्गों में विभाजित किया है-

(i) प्रत्यक्ष तथा वास्तविक निर्माता,
(ii) ऐतिहासिक प्रलेख,
(iii) कारण।

हॉलैंड ने विधि के चार स्रोतों का वर्गीकरण किया है–

(i) साहित्यिक स्रोत,

(ii) औपचारिक स्रोत-राज्य,

(iii) कारण-रूढ़ि, प्रथाएं एवं धर्म इत्यादि, तथा

(iv) न्यायिक निर्णय, साम्या और विधायन।

सामंड के वर्गीकरण की आलोचना करते हुए कीटन ने अपना वर्गीकरण मुख्यत: दो रूपों में किया है–

(i) विधि के आबद्धकर स्रोत–विधान, पूर्वनिर्णय और रूढ़िगत विधि।

(ii) प्रेरक स्रोत-वृत्तिक राय, नैतिकता और साम्या के सिद्धांत।

वस्तुत: विधि के स्रोतों की व्याख्या इस रूप में की जानी चाहिए कि विधि का उद्‌गम कहां से होता है। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष जिसने 'विधि' को प्रारूप प्रदान किया है। निस्संदेह उसमें रूढ़ि, पूर्वनिर्णय एवं विधायन मुख्य स्रोत के रूप में माने जाते हैं। शेष स्रोत गौण रूप में ही सही विधिक स्रोत के रूप में मान्य हो सकते हैं। डेल वेक्कियो ने तो मनुष्य की प्रकृति को ही विधि का स्रोत माना है। फिलहाल विधिक अध्ययन के रूप में रूढ़ि, पूर्वनिर्णयन और विद्यायन अति महत्वपूर्ण हैं।

1. रूढ़ि (Custom)

रूढ़ि उन प्रथाओं अथवा चलन को कहते हैं जिन्हें लंबे समय से अनुपालन के कारण विधि का बल प्राप्त हो गया है। यह व्यक्ति व समाज अथवा समाज व समाज अथवा राष्ट्र व राष्ट्र के बीच में हो सकता है। विधिक अनुभव दर्शित करते हैं कि विधि-निर्माण अथवा निर्णयज विधियों (पूर्वनिर्णयों) में रूढ़ि को महत्व प्रदान किया गया है, यदि उसमें रूढ़िगत तत्व विद्यमान पाए गए।

प्रकृति के अनुसार रूढ़ि को दो भागों में बांटा जा सकता है–

(i) बिना मंजूरी वाली रूढ़ियां-रूढ़ि जो अबाध्यकर होती हैं ऑस्टिन ने इसे विध्यात्मक नैतिकता माना है।

(ii) मंजूरी वाली रूढ़ियां-रूढ़ि जिन्हें राज्य द्वारा प्रवर्तित कराया जाता है और वे बाध्यकारी होती हैं। यह भी दो प्रकार की होती हैं–(1) विधिक रूढ़ियां-अर्थात्

(क) सामान्य रूढ़ियां-राज्य के समस्त क्षेत्र पर लागू।

(ख) स्थानीय रूढ़ियां-क्षेत्र विशेष में लागू रूढ़ियां।

2. कन्वेंशनात्मक रूढ़ियां–किसी करार के पक्षकारों को शासित करने वाली रूढ़ियां।

रूढ़ि पर विभिन्न विद्वान विधिशास्त्रियों ने अलग-अलग मत दिए हैं–

* सामंड के अनुसार- रूढ़ि ऐसे सिद्धांतों की अभिव्यक्ति है जिन्हें न्याय और लोकोपयोगिता के सिद्धांतों के रूप में राष्ट्रीय चेतना के तहत स्वीकार कर लिया गया है।

समाज के लिए रूढ़ि का वही महत्व है, जो विधि का राज्य के लिए। राज्य की विधि तथा न्याय व्यवस्था समाज की रूढ़ियों के अनुरूप होती है।

* सैविनी के अनुसार- रूढ़ियां लोगों की लोक-चेतना (Volkgeist) तथा राष्ट्र की इच्छा का प्रतीक होती हैं। रूढ़ि वास्तविक विधि का एक लक्षण है। इसका स्थान विधायन के पूर्व होता है।

* ब्लैकस्टोन के अनुसार– इंग्लैंड के कॉमन लॉ में रूढ़ियां भी सम्मिलित हैं और वे सामान्य विधि के भाग हैं।

रूढ़ि के आवश्यक तत्व

प्रत्येक रूढ़ि को विधि का बल प्राप्त नहीं होता है। केवल वे ही रूढ़ियां विधि का बल अर्थात् मान्यता प्राप्त करती हैं, जिनमें रूढ़ि के अनिवार्य तत्व विद्यमान होते हैं, जो निम्नलिखित हैं–

(1) प्राचीनता (Antiquity)- आंग्ल विधि में कोई रूढ़ि तब ही विधि मान्य होती है जब वह स्मरणातीत काल अर्थात् उस समय से जहां तक मनुष्य की स्मरण शक्ति जाती है, से अस्तित्ववान् होती है। सुविधा के लिए वहां रिचर्ड प्रथम का प्रारंभ काल अर्थात् 1189 ई. को मानक माना गया है अर्थात् रूढ़ियां निश्चय ही इस तिथि के पूर्व प्रारंभ हुई होनी चाहिए।

प्राचीन हिंदू विधि में भी मनु ने ऐसे ही तत्व को अनिवार्य माना था अर्थात् यह कि 'स्मरणातीत रूढ़ि श्रेष्ठ विधि है,' किंतु भारत में ऐसी कोई नियत तिथि नहीं है।

(2) निरंतरता (Continuance)- रूढ़ि का दूसरा मुख्य तत्व यह है कि उसका अनुपालन निरंतर होता रहा हो और समय के किसी भी बिंदु पर भंग न हुआ हो।

(3) निश्चितता (Certainity)- रूढ़ि को निश्चित भी होना चाहिए। अस्पष्ट अथवा अनिश्चित रूढ़ि को विधिक बल प्राप्त नहीं होता है। यह एक साक्ष्यिक नियम भी है।

(4) सुसंगतता (Consistency)- रूढ़ि को किसी अन्य स्थापित रूढ़ि से असंगत नहीं अपितु सुसंगत होना चाहिए। यदि दो रूढ़ियों के बीच में सुसंगता नहीं है, तो न्यायालय उसे अमान्य कर सकता है।

(5) युक्तियुक्तता (Reasonableness)- रूढ़ि युक्तियुक्त होनी चाहिए। एलेन के अनुसार, रूढ़ि जब तक अयुक्तियुक्त न हो, उसे स्वीकार किया जाना चाहिए। अर्थात 'युक्ति' के विरुद्ध रूढ़ि लागू नहीं हो सकती है।

(6) शांतिपूर्ण उपभोग (Peaceable Enjoyment) रूढ़ि तभी मान्य होगी जब कि उपर्युक्त तत्वों के साथ जन सामान्य के द्वारा उस रूढ़ि का शांतिपूर्वक उपयोग किया जा रहा हो। यदि उसमें व्यवधान आया हो, या उसका विरोध किया गया हो, तब वह अमान्य हो जाएगी।

(7) बाध्यकारी बल (Obligatory Force) - रूढ़ि में बाध्यकारी बल भी होना चाहिए। अर्थात् उसका अधिकारपूर्वक उपयोग किया गया हुआ होना चाहिए। यदि कोई रूढ़ि चोरी-छिपे या गुप्त रूप से होती रही हो, तो उसे बाध्यकारी बल वाली रूढ़ि नहीं माना जा सकता है।

(8) लोक नीति के अनुरूप (Confirmity with Public Policy)- कुछ विधिशास्त्री और अब न्यायालय भी यह मानते हैं कि रूढ़ि को लोकनीति के विरुद्ध नहीं होना चाहिए। यदि ऐसा है तो न्यायालय उसे अमान्य घोषित कर सकते हैं।

(9) सांविधिक विधि से अनुरूपता (Comfirmity with stutute law)- किसी रूढ़ि को सांविधिक विधि के भी अनुरूप होना चाहिए। अधिकांश विधि प्रणाली इसे मान्यता प्रदान किए हुए हैं कि संविधि रूढ़ि को मान्यता प्रदान करती है, तो उसे निराकृत भी कर सकती है (आंग्ल विधि)।

प्रो. एलेन ने ''लॉ इन द मेकिंग'' में रूढ़ि को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है :

''.....विद्यमान रूढ़ि विधि है। यदि इसे प्रश्नगत नहीं किया जाता है, तो यह देश की सामान्य विधि के रूप में प्रवर्तित होती है, यदि इसे चुनौती दी जाती है और इसे स्थानीय विधि के एक साधारण फेर-फार के रूप में विद्यमान साबित किया जाता है और आगे इसे किसी आधारभूत सामान्य विधिक सिद्धांत का उल्लंघन करता हुआ दर्शित नहीं किया जाता है, तो न्यायिक प्राधिकारी द्वारा 'युक्ति' विधि रूप में इसे मान्यता मिल जाती है।.....और यदि यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि इसकी प्रवृत्ति अनिष्टकर है, तो न्यायालय द्वारा इसे निराकृत कर दिया जाता है और तब से इसमें बाध्यकारी बल नहीं रह जाता है।''

ऑस्टिन के अनुसार- रूढ़ि विधि का एक स्रोत है किंतु स्वयं यह कोई विधि नहीं है। रूढ़ि उस समय तक विध्यात्मक विधि नहीं होती जब तक कि इसे न्यायालय द्वारा ऐसा घोषित न कर दिया जाए या उसे किसी संविधि में शामिल न कर लिया जाए अर्थात् संप्रभु के आदेश में शामिल न कर लिया जाए। यदि ऐसा नहीं है, तो रूढ़ियां केवल एक विध्यात्मक नैतिकता ही होती हैं।

ग्रे के अनुसार- रूढ़ियां प्रायः न्यायिक विनिश्चयों से उत्पन्न होती हैं। अतः रूढ़ियां तब तक विधि नहीं होतीं जब तक उन्हें न्यायिक मान्यता नहीं मिल जाती है।

सैविनी के अनुसार- रूढ़ि अपने-आप में विधि है। यह अपना औचित्य स्वयं अपने में रखती है। यह विध्यात्मक विधि का एक पद चिन्ह है, उसकी उत्पत्ति का आधार नहीं। रूढ़ियां लोकमत (वाकजीस्ट) और राष्ट्रीय चरित्र पर आधारित होती हैं। इसलिए उनमें न्याय के वे सिद्धांत समाविष्ट होते हैं जिनको समाज मान्यता देता है। राज्य को उन्हें स्वीकार करने के सिवाय, कोई विवेकाधिकार या शक्ति नहीं है।

ऐतिहासिक विचारधारा के समर्थक मानते हैं कि ''रूढ़ि विधायन की पूर्वगामी होती है। अतः उससे श्रेष्ठ होती है तथा विधायन को रूढ़ि के सिद्धांतों के अनुरूप होना चाहिए।''

प्रश्नकोश

Q. किस विधिशास्त्री ने विधि स्रोतों का विभाजन औपचारिक स्रोत और तात्विक स्रोत के रूप में किया है?

A. **सामंड** ने।

Q. सामंड के अनुसार, विधिक स्रोत किसे माना जाएगा?

A. (i) वे जो विधि द्वारा मान्यता प्राप्त होते हैं; और
(ii) वे, जो एकमात्र द्वार हैं, जिससे होकर नए सिद्धांतों को विधि में प्रवेश मिल सकता है।

Q. विधि के स्रोत को बंधनकारी स्रोत और अनुनयी स्रोत के रूप में विभाजन किसने किया?

A. **कीटन** ने।

Q. क्या विधिज्ञों की राय विधि से स्रोत के रूप में समाविष्ट हैं?

A. **नहीं**।

Q. विधिशास्त्र में मान्य विधिक स्रोत क्या हैं?

A. 1. **रूढ़ि**,
2. **पूर्व निर्णय**, तथा
3. **विधायन।**

Q. ''रूढ़ि का समाज से वही संबंध है, जो विधि का राज्य से होता है।'' यह कथन किस विधिशास्त्री का है?

A. **सामंड** का।

Q. रूढ़िजन्य विधि, विधि का स्रोत है क्योंकि यह व्युत्पन्न होती है?

A. केवल ऐसी रूढ़ियों से जो समाज में स्मरणातीत काल से अनुसरण की जाती रही हैं।

Q. कोई स्थानीय रूढ़ि विधि के स्रोत के रूप में विधिमान्य और प्रवृत्त रहे इसके लिए प्राचीनता के अतिरिक्त कौन-सी अपेक्षाएं पूर्ण की जानी चाहिए?

A. युक्तियुक्तता और संविधि से अनुरूपता (पूछे गए प्रश्नानुसार)।

Q. ''रूढ़ि विधायन से पूर्वगामी होती है, अतः उससे श्रेष्ठ होती है, तो विधायन को रूढ़ि के सिद्धांतों के अनुरूप होना चाहिए।'' यह सिद्धांत विधिशास्त्र की किस विचारधारा का लक्षण है?

A. **ऐतिहासिक विचारधारा** का।

Q. फ्रेडरिक कार्ल वार्न सैविनी ने रूढ़ि के संबंध में क्या मत व्यक्त किया है?

A. (i) रूढ़ि का स्थान विधायन से पूर्व है।
(ii) विधायन को रूढ़िगत व्यवहार के ही अनुकूल होना चाहिए।
(iii) रूढ़ि विधायन से वरीय होती है।

Q. ''रूढ़ि वास्तविक विधि का एक लक्षण है उसकी उत्पत्ति का आधार नहीं''। यह कथन किस विधिशास्त्री का है?

A. **सैविनी** का।

Q. रूढ़ि के मुख्य आवश्यक तत्व क्या हैं?

A. 1. रूढ़ि निश्चित होनी चाहिए;
2. रूढ़ि को स्मरणातीत काल से उपयोग किया जा रहा हो;
3. रूढ़ि युक्तियुक्त हो;
4. वह पुरातन हो;
5. उसका प्रयोग शांतिपूर्वक किया गया हो;
6. वह निश्चित रूप से एक रूप हो;
7. उसमें निरंतरता हो;
8. उसमें संगतता हो।

Q. रूढ़ि के लिए क्या तत्व होना अनिवार्य नहीं है?

A. 1. मौलिकता,
2. असंगतता,
3. वह न्यायिक रूप से मान्यता प्राप्त हो,
4. उसे नैतिक बल प्राप्त हो,
5. वह सरकार द्वारा अनुमोदित हो।

Q. 'एक रूढ़ि जिसकी प्राधिकारिता, उसकी स्वीकृति तथा बाध्य होने वाले पक्षकारों के मध्य करारों में सम्मिलित किए जाने पर सशर्त आधारित होती है', यह किस प्रकार की रूढ़ि मानी जाती है?

A. **अभिसमयात्मक रूढ़ि**।

Q. विधि के स्रोतों की विवेचना करते हुए कौन विधिशास्त्री कहता है कि ''न्यायालय संविधि के मृत शब्दों में जीवन फूंकने का कार्य करता है''?

A. **ग्रे**।

2. पूर्व-निर्णय (Precedents)

पूर्व-निर्णय का तात्पर्य, सामान्य विधिक भाव में, **पूर्व न्याय; नजीर** अथवा **दृष्टांत** से है। सामान्य प्रयोग में पूर्व-निर्णय को 'भावी आचरण का मार्गदर्शन करने वाला कोई निश्चित नमूना' के रूप में जाना जाता है। न्यायिक क्षेत्र में इसे **'भूतकालीन विनिश्चयों का भावी मामलों के लिए मार्गदर्शन करने'** के रूप में माना जाता है। **ऑक्सफोर्ड शब्दकोश** में पूर्व-निर्णय को इस प्रकार परिभाषित किया गया है–

''एक पूर्ववर्ती उदाहरण या मामला जो पश्चात्वर्ती मामलों के लिए एक दृष्टांत या नियम है या उसे उस रूप में माना जा सके या उन्हें न्यायोचित ठहराया जा सके।''

(a previous instance or case which is, or may be taken as an example or rule for subsequent cases, or by which some similar act or circumstances may be supported or justified)।

वस्तुत: जब कभी किसी वरिष्ठ न्यायालय के द्वारा दिए गए कोई ऐसे विनिश्चय, जो कोई नया नियम या सिद्धांत अधिकथित करते हैं, उक्त निर्णय भावी मामलों में न्यायिक विनिश्चय के लिए एक दृष्टांत बन जाते हैं और यदि कोई पश्चात्वर्ती न्यायालय उसको अपने निर्णय में अपनाता है या दृष्टांतस्वरूप ग्रहण करता है, तो वह पूर्व-निर्णय के रूप में जाना जाता है। यह चलन आंग्ल न्यायालयों के साथ विश्व के लगभग सभी सभ्य देशों के न्यायालयों में रहा है, जिसकी व्यापकता के कारण ही इसे विधि के एक स्रोत के रूप में मान्यता प्राप्त हुई, जो प्राचीन काल से लेकर आज तक अपना अस्तित्व बनाए रखे हैं।

चूंकि पूर्व-निर्णय का संबंध प्रत्यक्ष रूप से न्यायिक विनिश्चय से है। अत: पूर्व-निर्णय को कभी-कभी न्यायाधीश निर्मित विधि भी माना जाता है।

यद्यपि इसका विस्तार सीमित है और न्याय, साम्य, सदविवेक, अपकृत्य विधि, सामान्य विधि के रूप में प्रत्यक्ष: तथा प्रांङन्याय, पूर्व न्याय विधियों के निर्वचन तथा मानवाधिकारों के संरक्षण मामलों में इसे प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में देखा जा सकता है।

कोक के अनुसार **'मोजेज' (Moses) प्रथम लॉ रिपोर्टर** था जिसने पूर्व-निर्णय को आधार प्रदान किया। पुन: आरेटरों ने रेस जुडिकेटा (प्रांङन्याय) को विधि के स्रोत के रूप में सम्मिलित किया। ऐसा माना जाता है कि बैक्टन ने अपने ग्रंथ में कम-से-कम पांच सौ निर्देश दिए हैं। पुन: 14वीं शताब्दी से ईयर बुक्स का प्रकाशन प्रारंभ हुआ और तत्पश्चात् से ही पूर्व-निर्णय (विनिश्चित मामले) प्रामाणिकता ग्रहण करते गए, जो आगे चलकर पूर्व निर्णय के रूप में विख्यात हो गए तथा इसने आंग्ल विधि को एक नया आधार प्रदान किया। इसी क्रम में 'जब न्यायालयों का सोपान तंत्र स्थापित हुआ तो पूर्व-निर्णय ने अपना सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर लिया।

पूर्व निर्णय के दो सामान्य नियम हैं–

(i) प्रत्येक न्यायालय अपने ऊपर के न्यायालयों के विनिश्चयों से आबद्ध हैं।

(ii) उच्चतर न्यायालय अपने विनिश्चयों से आबद्ध होते हैं।

आंग्ल न्यायालयों की श्रृंखला निम्न स्तर पर काउंटी कोर्ट अथवा मजिस्ट्रेट के न्यायालय से प्रारंभ होकर उच्च न्यायालय (क्वींस बेंच डिवीजन, चांसरी डिवीजन, प्रोबेट एंड अदर्स), कोर्ट ऑफ क्रिमिनल अपील (दांडिक अपील न्यायालय), कोर्ट ऑफ अपील (दांडिक से भिन्न अपीलें) और हाउस ऑफ लार्ड्स के न्यायालय (सर्वोच्च न्यायिक अभिकरण) तक स्थापित हैं।

पूर्व-निर्णय के नियमानुसार हाउस ऑफ लार्ड्स के न्यायिक विनिश्चय अपने निम्नतर सभी न्यायालयों पर आबद्धकर होंगे और हाउस ऑफ लार्ड्स के निर्णय स्वयं इस पर आबद्धकर होंगे। श्रेणी क्रम का यह अनुसरण भारतीय संदर्भ में भी समरूप है।

लंदन स्ट्रीट ट्रामवेज बनाम एल.सी.सी., 1898 A.C. 375 के वाद में यह कहा गया कि हाउस ऑफ लार्ड्स का विधि प्रश्न पर दिया गया कोई विनिश्चय बाद में हाउस ऑफ लार्ड्स के लिए अंतिम है, किंतु लोक नीति के प्रश्न पर इसकी अनिवार्यता पर प्रश्न चिन्ह लगाया गया और कुछ प्रख्यात न्यायाधीशों का मत रहा कि हाउस ऑफ लार्ड्स में उन मामलों में जिनमें लोक नीति का संबंध है, पूर्व-निर्णय को नहीं माना जा सकता। सामंड, पोलाक और गुडहार्ट जैसे विधिशास्त्री भी इसी मत के रहे।

अंतत: **जुडिशियल प्रैक्टिस स्टेटमेंट, 1966** के द्वारा **निर्णीतानुसरण (Stare decisis)** की परिपाटी को उपांतरित कर दिया गया। यही स्थिति **प्रिवी काउंसिल (Privy Counsil)**, जो ब्रिटिश उपनिवेश के देशों की अपील सुनती थी, के निर्णय पर भी प्रभावी है। अब प्रिवी काउंसिल के निर्णय का सम्मान किया जाता है, किंतु ज्यों का त्यों अनुसरण नहीं। फिलहाल आंग्ल विधि में निर्णीतानुसरण का सिद्धांत इसका एक विशिष्ट लक्षण है और इसकी कठोरता को बहुत सीमा तक कम कर दिया गया है।

भारत में पूर्व निर्णय–भारत में पूर्व निर्णय का अनुसरण प्राचीन काल में छिट-पुट उल्लेख के सिवाय अज्ञात था। यही स्थिति मध्य काल में भी थी। देश में मुगल शासन एवं तत्पश्चात् ब्रिटिश उपनिवेश काल में ब्रिटेन के सिद्धांत यहां भी लागू रहे